रस एवं ध्वनि सिद्धांत का साहित्य में योगदान

संदीप कौर

अस्टैंट प्रोफेसर (हिन्दी)

गुरू नानक गर्ल्स कॉलेज यमुनानगर (हरियाणा)

आचार्य भरतमुनि को रस संप्रदाय का मूल प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने अपने ग्रंथ – 'नाट्यशास्त्र' में नाटक के मूल तत्वों का विवेचन करते हुए 'रस' का विवेचन किया है। वे 'रस' को नाटक का प्राण मानते हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जो रस सूत्र दिया है वह निम्नलिखित है।

"विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः"

अर्थात विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के (स्थायी भाव से) संयोगसे रस की निष्पत्ति होती हैं। भरतमुनि ने सर्वप्रथम रस के स्वरूप पर विचार किया है।

भरतमुनि के अनुसार –

"रस नाटक का वह तत्व होता है जोकि सहृदय को आस्वाद प्रदान करता है। और जिसके आस्वाद से वह हर्षित हो उठता है।"

डॉ. गणपति चंद्र गुप्त के अनुसार–

"रस एक मिश्रित तत्व है जिसमें स्थायी भावों के साथ भावों, अनुभावों का अभिनय मिश्रित रहता है। भावों, अनुभावों आदि से मिश्रिम स्थायी भाव को जब अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो उससे सामाजिक को जो आस्वाद प्राप्त होता है, वही रस है।"

रस सूत्र व्याख्याता आचार्य

भरतमुनि के रस सूत्र में आए 'संयोग' एवं 'निष्पत्ति' शब्द की व्याख्या जिन चार आचार्यो ने की, उन्हे उस सूत्र का व्याख्याता आचार्य कहा जाता है। इन आचार्यों के नाम और इनके मत निम्नलिखित हैः–

भट्ट लोलनट

रस सूत्र के प्रथम व्याख्याता आचार्य भट्ट लोलनट है। इनका मत 'उत्पत्तिवाद' या

'आरोपवाद कहा जाता हैं। इनके अनुसार निष्पत्ति' का अर्थ–उत्पत्ति तथा 'संयोग' का अर्थ–उत्गद्य–उत्पादक, गम्य–गमक एंव पोष्य–पोषक सम्बन्ध। वे रस की स्थिति अनुकार्य (मूल पात्र) में मानते हैं। दर्शक अभिनेताओं पर मूल पात्रों का आरोप कर लेता है, इसलिए इनका मत आरोपवाद कहा जाता है।

आचार्य शंकुक

रस सूत्र के दूसरे व्याख्याता आचार्य शंकुक हैं। इनका मत 'अनुमितिवाद' कहा जाता हैं। इन्होंने 'चित्रतुरंग न्याय' के आधार पर रस निष्पत्ति की व्याख्या की। जैसे चित्र में बनें तुंरग (घोड़े) को देखकर हम उसे घोड़ा मान लेते हैं, उसी प्रकार दर्शक नट में राम आदि की प्रतीति कर लेता है और फिर उसमे रतिआदि भावो का भी अनुमान कर लेता है। इस विलक्षण अनुमान को 'कला प्रतीति' कहा जाता है। शंकुक के अनुसार 'संयोग' का अर्थ – अनुमान और निष्पत्ति का अर्थ – अनुमिति

भट्ट नायक

रस सूत्र की तीसरे व्याख्याता आचार्य भट्ट नायक हैं। इनके मत को 'भुक्तिवाद' कहा जाता है। रस निष्पत्ति में इनका सबसे बड़ा योगदान साधारणीकरण का सिद्धांत है। इनके अनुसार शब्द रूप काव्य के तीन व्यापार होते हैं–

अभिधा व्यापार

भावकत्व व्यापार

भोजकत्व व्यापार

अभिधा से काव्य शब्दार्थ समझ में आता है तथा भावकत्व से साधारणीकरण होता है, जब भोजकत्व व्यापार से हम साधारणीकृत स्थायी भाव का रस रूप में भोग करते हैं। इनके अनुसार 'संयोग का अर्थ है– भोज्य–भोजक संबंध तथा निष्पत्ति का अर्थ– भुक्ति। इनके भुक्तिवाद का मूलाधार सांख्य दर्शन है।

आचार्य अभिनव गुप्त

रस सूत्र के चौथे व्याख्याता आचार्य अभिनवगुप्त हैं। इनके मत को अभिव्यक्तिवाद कहा जाता है। वे रस को व्यंजना का व्यापार मानते हैं। जैसे जल के छींटे देने से मिट्टी में व्याप्त गंध व्यक्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सहृदय में वासना रूप से निरन्तर विद्यमान स्थायी भाव विभावादि के संयोग से अभिव्यक्त हो जाते हैं। वे रस की सत्ता आत्मगत मानते हैं। रस सहृदय सामाजिक के हृदय में व्याप्त होता है। अभिनव गुप्त के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ – अभिव्यक्ति और संयोग का अर्थ–व्यंग्य–व्यंजक संबंध। इनका रस सिद्धांत शैव मत पर आधारित है।

रस काव्य की आत्मा

काव्य के पढ़ते या सुनते समय हमें जिस आनंद की अनुभूति होती है, उसे ही रस कहा जाता है। पाठक या श्रोता के हृदय में स्थित भाव ही विभावादि से संयुक्त होकर रस रूप में परिणत हो जाता हैं। काव्यानंद कोब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। रस को काव्य की आत्मा या प्राणतत्व माना गया है। रसहीन काव्य निर्जीव है, अतः रस के बिना काव्य का अस्तित्व ही नहीं है। जैसे प्राण के अभाव में शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार रस के अभाव में कोई रचना काव्यत्व से ही रहित हो जाती है। रस ही कविता को प्राणवान बनाता है। और यही पाठक या श्रोता को आनंदमग्न करके भाव समाधि में पहुंचा देता है। अतः रस को काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है।

रस की विशेषताएं

रस की अनेक विशेषताएं आचार्य विश्वनाथ ने बताई हैः–

1. रस आस्वाद रूप है, इस आस्वाद नहीं।

2. रस की उत्पत्ति सतोगुण के उद्रक से होती है।

3. रस ब्रह्मानंद सहोदर है।

4. रसानुभूति अलौकिक होती है।

5. रस चिन्मय (ज्ञान स्वरूप) है।

6. रस स्वप्रकाशनंद है।

7. रस अखंड है।

8. रस की अनुभूति तन्मयता की स्थिति में होती है।

9. रस लोकोत्तर चमत्कार है।

भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों में सबसे प्रबल एवं महत्वपूर्ण ध्वनि सिद्धान्त है। ध्वनि सिद्धान्त का आधार अर्थ ध्वनि को माना गया है तथा अर्थ ध्वनि को समझने के लिए शब्दों के भिन्न–भिन्न रूपों, उनके भिन्न–भिन्न अर्थों और उन अर्थों का बोध कराने वाले अर्थ व्यापारों को समझना आवश्यकत है। ये अर्थ व्यापार ही 'शब्द शक्तियाँ' कहलाते हैं। ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना का श्रेय 'आनंदवर्धन' को है किन्तु अन्य सम्प्रदायों की तरह ध्वनि सिद्धान्त का जन्म आनंदवर्धन से पूर्व हो चूका था, स्वयं आनन्दवर्धन ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों का मतोल्लेख करते हुए कहा है कीः

'कावयस्यात्मा ध्वनिरित बुर्धयः समाम्तातपूर्वः'

अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है ऐसा मेरे पूर्ववर्ती विद्वानों का भी मत हैं। आनंदवर्धन के पश्चात 'अभिनवगुप्त' ने 'ध्वन्यालोक' पर 'लोचन टीका' लिखकर

ध्वनि सिद्धान्त का प्रबल समर्थन किया। आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त दोनों ने रस और ध्वनि का अटूट संबंध दिखाकर रास मत का ही समर्थन किया था। आन्नदवर्धन ने 'रस' ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ ध्वनि माना है जबकि अभिनवगुप्त रस–ध्वनि को 'ध्वनित' या 'अभिव्यंजित' मानते हैं। परवर्ती आचार्य मम्मट् ने ध्वनि विरोधी मुकुल भट्ट, महिम भट्ट, कुन्तक आदि की युक्तियों का सतर्क खंडन कर ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की । उन्होंने व्यंजना को काव्य के लिए अपरिहार्य माना इसीलिए उन्हें 'ध्वनि प्रतिष्ठापक परमाचार्य' कहा जाता है।

ध्वनि: अर्थ एवं परिभाषा:–

संस्कृत काव्यशास्त्र मे ध्वनि सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हैं। 'ध्वनि' शब्द की निष्पत्ति 'ध्वन' धातु में 'इ' प्रत्यय के संयोग से हुई हैं। ध्वनि शब्द का सामान्य अर्थ है कानों में सुनाई पड़नेवाला नाद या आवाज़।

ध्वनि की परिभाषा: आनन्दवर्धन ने ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार दी है:–

"जिस रचना में वाचक विशेष और वाच्य विशेष अपने अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर काव्यार्थ (व्यंगयार्थ) व्यक्त करते हैं वह 'ध्वनि' कहलाती है।"

ध्वनि की व्युपत्ति मूलक परिभाषाएँ इस प्रकार हो सकती है:–

१: व्यंजक ध्वनि:– "ध्वनति ध्वनयति वा य:स: व्यंजक: शब्द:ध्वनि:।" अर्थात् ध्वनित होनेवाला व्यंजक शब्द ध्वनि है।

२ : व्यंजक अर्थ:– "ध्वनति ध्वनयति व य:स: व्यंजक:अर्थ:ध्वनि।" अर्थात् वह व्यंजक अर्थ ध्वनि है जो अन्य अर्थ को ध्वनित करें या कराए।

३ : व्यंगार्थ:– "ध्वन्यते इति ध्वनि:।" अर्थात् जो ध्वनित हो उसे ध्वनि कहते है।

४: व्यंजना व्यापार :– "ध्वन्यते अनेन इति ध्वनि।" अर्थात् जिसके द्वारा ध्वनित किया जाए वह ध्वनि है।

५: व्यंजना प्रधान काव्य:– "ध्वन्यते अस्मिन् इति ध्वनि:।" अर्थात् जिस काव्य में रस, अलंकार , एवं वस्तु ध्वनित होते है वह काव्य ध्वनि काव्य है। इस तरह व्युपत्तिमूलक अर्थ में व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंगयार्थ, व्यंजना व्यापार, व्यंजना प्रधान काव्य इनमें ध्वनि का विस्तार मिलता है।

आचार्य मम्मट के अनुसार ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार से है:

'जहाँ व्यंगयार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अतिशय उत्तम अर्थात् चमत्कारपूर्ण होता है उसे ही विद्वानों ने ध्वनि कहा हैं।'

ध्वनि सिद्धान्त के प्रमुख रचनाएँ (प्रवर्तक):–

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य की आत्मा के विषय में विचार करनेवाले जो काव्य सिद्धान्त हैं उनमें 'ध्वनि सिद्धान्त' महत्वपूर्ण हैं। जिन आचार्यों ने काव्य की आत्मा

के रूप में ध्वनि को महत्व दिया उनके मतों के आधार पर ध्वनि सम्प्रदाय प्रचलित हुआ।

१ आचार्य आनन्दवर्धनः– ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन है। आचार्य आनन्दवर्धन ने 'ध्वन्वालोक नामक ग्रन्थ की रचना की। ध्वनि सिद्धान्त के लिए ध्वन्वालोक एकमात्र की ग्रन्थ है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ९वीं शताब्दी में ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की। आचार्य आनन्दवर्धन ने तीन सम्प्रदायों के उल्लेखों का खण्डन किया वे इस प्रकार से हैः

१ अभावादी २ भक्तिवादी ३ अनिर्वचनियतावादि।

इन तीनों का खण्डन क्र ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना की। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार किया हैं। व्यंजना को ध्वनि का आधारभूत तत्व मानते हुए आनन्दवर्धन ने व्यंजना के मूल में अभिधा और लाक्षणा शब्द शक्तियों को मन हैं। इसी आधार पर उन्होंने ध्वनि के दो भेद किये हैंः–

क) अविवक्षित वाच्य ध्वनि अथवा लक्षणामूला ध्वनि।

ख) विविक्षितान्यपर वाच्य ध्वनि अथवा अभिधामूला ध्वनि।

२ आचार्य अभिनवगुप्त : आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित ध्वनि सिद्धान्त का समर्थन करने वाले आचार्यो में आचार्य अभिनवगुप्त का स्थान महत्वपूर्ण हैं। १० वीं तथा ११वीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने 'ध्वनयालोक' पर 'लोचन' नामक टीका लिखी। ध्वन्यालोक की यह टीका मूल ग्रन्थ से भी अधिक सशक्त एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई।

अभिनव मूलतः रसवादी आचार्य थे। अतःरस की सम्पक पुष्टि के लिए उन्होंने ध्वनि सिद्धान्त को महत्व प्रदान किया और सिद्ध किया की 'रस' वाच्य न होकर व्यंग होता है। इस प्रकार उन्होंने रस और ध्वनि के अभिन्न संबंध की स्थापना की। उन्होंने काव्य में रस ध्वनि को महत्व देते हुए वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि को भी रस की पोषक तत्व के रूप में स्वीकार किया है।

३ आचार्य मम्मट्ः– ११ वीं शताब्दी के मध्य में आचार्य मम्मट का काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आगमन हुआ। तब तक कुछ आचार्यों द्वारा ध्वनि सिद्धान्त का बहुत विरोध हुआ था इसीलिए आचार्य मम्मट ने ध्वनि सिद्धान्त का खंडनात्मक विरोध करनेवाले मतों का विरोध करते हुए ध्वनि सिद्धान्त का जोरदार समर्थन किया उसके लिए उन्होंने 'काव्य प्रकाशन' नामक के ग्रन्थ का निर्माण किया। इस ग्रन्थ में महत्वपूर्ण तत्वों के आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में ध्वनि सिद्धान्त की पूर्न स्थापना की। उन्होंने ध्वनि को आधार बनाकर ही काव्य के तीन भेद कियेः–

१ ध्वनि काव्य २ गुणिभूत काव्य ३ चित्रकाव्य

आचार्य मम्म्ट ने ध्वनि काव्य को ही श्रेष्ठ माना है।

४ पण्डितराज जगन्नाथः– आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ को अन्तिम ध्वनि समर्थक आचार्य माना जाता हैं। उन्होंने 'रसगंगाधर' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। उन्होंने ध्वनि के आधार पर काव्य के तीन भेदो के स्थान पर चार भेदों की स्थापना की। प्राचीन ध्वनिवादि आचार्य 'रस' को केवल असंलक्ष्य क्रम व्यंग ध्वनि पद्रत वाक्यगत ही मानते थे किन्तु पण्डितराज ने 'रस' को संलक्ष्यक्रम व्यंग ध्वनि के अंतर्गत भी सिद्ध किया।

संदर्भ सामग्रीः

ध्वनि सिद्धान्त (सम्प्रदाय) स्वरूप, प्रमुख रचनाएँ तथा भेद

भारतीय काव्यशास्त्र में सम्प्रदायों का विकास (भाग–2)